मोदी का विकल्प क्या ?

तो क्या मोदी का फ़िलहाल कोई विकल्प है ?

विकल्प बनने को फ़िर से संगठित होने की कोशिश में हैं वही ताकतें जो अपना प्रभाव लगभग खो बैठी हैं और जिनसे त्रस्त होकर 31 फ़ीसदी वोटरों ने मोदी का चुनाव कर लिया, जिसे वो सवा अरब भारतीयों का समर्थन बताते हैं। कांग्रेस तो मुर्दा पड़ी है। समाजवादी पार्टी, जदयू, चौटाला एवं अन्य क्षेत्रीय दल फ़िर से एक होने की कोशिश कर रहे हैं और दशकों पुराना गैरभाजपावाद-गैरकांग्रेसवाद का नारा उछाल रहे है। वामपंथी भी योजना बना रहे हैं और फ़िर से अपनी ताकत आजमाना चाहते हैं। पर लगता नहीं कि मोदी का विकल्प बन पाएंगे। जातिवाद और अल्पसंख्यकवाद के आधार पर कब तक वोटरों को बरगला कर लूट का निज़ाम क़ायम किया जा सकता है। विकल्प भविष्य के गर्भ में है। ज्वालामुखी ज़मीन के अंदर धधक रहा है।

-मनोज कुमार झा

यह बहुत पहले से कहा जा रहा था कि देश में राजनीतिक संकट बहुत ही गहराता चला जा रहा है। वर्तमान व्यवस्था के तहत वह असाध्य हो चुका है। उसी संकट का विस्फ़ोटक रूप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रतिनिधि नरेन्द्र मोदी के शासन के रूप में सामने आया है, जिसका चरित्र पूरी तरह फ़ासीवादी है।

इस शासन को देर-सबेर जनतांत्रिक लबादे की भी जरूरत नहीं रह जाएगी। लेकिन क्या संघ का शासन भारतीय पूंजीपतियों को उनके अपने पूंजी के विस्तार और मुनाफ़े के ठहराव की अवरोधक समस्या से निजात दिला सकता है ? हर्ग़िज नहीं ? जब ये काम भ्रष्ट और पतनशील कांग्रेस, तमाम रंग-बिरंगे क्षेत्रीय दल और वामपंथी भी नहीं कर सके, तो संघ और नरेन्द्र मोदी के हाथ में कोई जादू की छड़ी नहीं है जो वो पूंजीपतियों को उनके संकट से बाहर निकाल सकें। यह वस्तुगत यथार्थ है। हिंदू राष्ट्रवाद की अग्र नारेबाज़ी के साथ सत्ता में आनेवाले संघ और नरेन्द्र मोदी के आर्थिक सलाहकारों को विदित हो कि आज इतिहास का वो दौर है जब पूंजी का स्वरूप वैश्विक हो गया है और विश्व पूंजीवाद ठहराव और भीषण संकट की स्थिति में है तो भारतीय पूंजीपति अपने विकास का स्वर्णिम मार्ग नहीं तलाश कर सकते। लाख प्रयास के बावजूद नरेन्द्र मोदी अंबानियों के मुनाफ़े का अनंत विस्तार कर पाने में सफ़ल नहीं हो सकते। न ही यहां पूंजी का विनिवेश ही करा सकते। इसके लिये कांग्रेस-सपा-जदयू-राजद-तृणमूल-बीजद-वामपंथियों ने अथक प्रयास किए, मानव श्रम से लेकर ज़मीन और प्राकृतिक संसाधनों की लूट की खूली छूट दे दी देशी-विदेशी पूंजीपतियों को, पर टाटा से लेकर अंबानी तक का मुनाफ़ा सिकुड़ता गया। अब अंबानी पहले नंबर पर नहीं है। क्या मोदी उसके लिए अकूत मुनाफ़े की गारंटी कर सकते हैं ?

ये अलग बात है कि मोदी प्रधानमंत्री की हैसियत भूल कर अंबानियों को सार्वजनिक मंचों पर अपनी पीठ पर हाथ रखने दे रहे हैं, पर इससे तो इसका कोई खास भला नहीं होना। हां, तमाम तरह की रियायतें और निजीकरण के विस्तार से उन्हें जो तात्कालिक राहत मिलेगी, वो जनता के बढ़ते दरिद्रीकरण के कारण अंतत: उनके मुनाफ़े का दायरा तंग तो करेगी ही, सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियां इतनी विस्फ़ोटक हो जाएंगी कि राजनीति दावानल में फंस सकती है। अभी ही उसके संकेत मिलने लगे हैं।

नरेन्द्र मोदी का 'मेक इन इंडिया' विश्व पूंजी के लिए 'लूट इन इंडिया' जैसा आमंत्रण है, पर यह भी सफल होता दिखाई नहीं पड़ता। रक्षा जैसे क्षेत्र को साम्राजी पूंजीनिवेश के लिए खुला छोड़ देने के बावजूद अभी तक कोई सकारात्मक संकेत नहीं मिल पा रहा है। विश्वव्यापी मंदी के दौर ने जो एक सिलसिले के रूप में चला आ रहा है, ओबामा तक को परेशान कर रखा है। विश्वपूंजीवाद के सामने अस्तित्व का गंभीर संकट पैदा हो गया है। ऐसे में यह व्यवस्था येन-केन-प्रकारेण अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए प्रत्यक्ष लूट पर आमादा हो जाती है और राजनीतिक सत्ता दमन के हर स्तर पर उतरती है, इसके पहले जनता को तरह-तरह से बहलाने और बरगलाने के उपक्रम करती है, जो बहुत कुछ अब मोदी के शासन में साफ़-साफ़ दिखाई भी पड़ रहा है। पहले दर्जे की धूर्तता के साथ ड्रामेबाज़ी। हर स्तर पर फूहड़पन का प्रदर्शन। साथ ही, लूटतंत्र और दमनतंत्र को मजबूत बनाने का उपक्रम भी चलता रहता है। छांट-छांट कर मनमाफ़िक और अपने फ़न में उस्ताद लोगों को सत्ता संचालन के लिए मुख्य पदों पर बिठाया जाता है। और उनकी नकेल भी कसके रखी जाती है, जैसा, कि मोदी कर रहे हैं। शिवसेना से तोड़ने-जोड़ने के खेल में और मंत्रिमंडल के विस्तार में ये साफ़ दिखाई पड़ता है। फ़िर भी क्या व्यवस्था का संकट टल पाएगा या वह और भी गहन होता जाएगा ?

मोदी के शासन को कभी इस कसौटी पर नहीं कसा जा सकता कि उन्होंने चुनाव जीतने के लिए जनता से जो वायदे किए, उन्हें पूरा करते हैं या नहीं, क्योंकि थोड़ा भी राजनीतिक बोध और ज़मीनी हक़िक़त का अंदाज़ रखने वाले को ये पता है कि वो वादे पूरी तरह खोखले थे और कोई पूंजीवादी निज़ाम उन्हें पूरा नहीं कर सकता। बहरहाल, मोदी के शासन की सफलता को आंकने की कसौटी ये होगी कि ठहराव की इस हालत में वो विदेशों से पूंजी के प्रवाह को किस हद तक सुनिश्चित कर सकते हैं, जिससे अंबानियों और उनके छुटभैय्यों के साथ दस प्रतिशत उच्च वर्ग के मलाईदार तबके को पूरी निश्चिंतता मिले। हर-हर और मोदी-मोदी की गुहार लगाने वालों की चिंता उन्हें नहीं करनी, क्योंकि वो तो जहां मौका मिला, छीन-झपट कर ही माल खा लेंगे। साथ ही, मोदी ने उन अल्पसंख्यक विचारहीन अपने युवा समर्थकों के 'सम्मानजनक रोज़गार' के लिए कुछ नहीं किया तो वो क्या करेंगे ? कब तक धैर्य रखेंगे ? इससे सामाजिक संकट और बढ़ेगा। फ़साद बढेंगे। 'किस ऑफ लव' जैसे प्रायोजित कार्यक्रम समाज में घुटन की स्थिति को और भी बढ़ावा देंगे। टूटन और बिखराव बढ़ेगा। मोदी सरकार ने केंद्रीय भर्तियों पर अभी एक साल के लिए पूरी रोक लगा दी है। ठेके पर लोग जरूरत के हिसाब से बहाल कर लिए जाएंगे। फ़िर पहले से ही विस्फ़ोटक ज्वालामुखी का रूप ले चुकी बेरोज़गारी की समस्या का क्या होगा ! जाहिर है, आने वाला परिदृश्य भयावह होगा।

पूंजीपति मोदी और अन्य हिंदुत्ववादी लुटेरों पर दाव तो लगा रहे हैं, ये अलग बात है कि वे अरब लुटेंगे तो करोड़ कमीशन इनका भी बनता है ओर मोदी ये इंतजाम करेंगे कि भ्रष्टाचार का भंडाफ़ोड़ न हो। लेकिन देश का कोयला लूटने की छूट देने वालों में कांग्रेसियों के साथ भाजपाई भी थे और कांग्रेसियों का समर्थन नीतिश, लालू, मुलायम, वामपंथी किसने नहीं किया। अभी भी नीतिश ने कांग्रेस के साथ ही बिहार में महा गठबंधन बनाया था। साथ ही, अपने को भ्रष्टाचार का विरोधी कहने वाले मोदी जी के मंत्रिमंडल पर नज़र डालिए तो एक से बढ़ कर एक भ्रष्टाचारी सूरमा नज़र आते हैं। गडकरी जी तो साक्षात हैं ही, येदियुरप्पा जी को अनेक भ्रष्टाचार के कारण भाजपा ने ही निकाल बाहर किया था, जिन्हें मोदी जी आदरपूर्वक फ़िर से पार्टी में अपना मुख्य आदमी बनाकर ले आए, जिनसे अपनी बेल्लारी सीट भी जीतते न बनी। इसलिए, अगर कोई यह समझता है कि मोदी भ्रष्टाचार मिटा देंगे और भ्रष्टाचारियों पर कमान कस देंगे, तो वह उल्लू ही माना जाएगा।

यह बात जनता को समझ में आ जानी चाहिए और बहुतों को तो अब आ भी रही है कि ये मोदी 'बगुला भगत' है उसने लोगों को जबरदस्त उल्लू बनाया है। क्योंकि अब आलू भी 40 रुपए किलो खरीद कर खाना पड़ रहा है। दूसरी तरफ़, अब वो बता रहा है कि देश की सबसे बड़ी समस्या गंदगी है और यही एकमात्र मुद्दा है, जिसका समाधान करना है। इसे लेकर वो जोरदार नौटंकियां दिखा रहा है। हेमा मालिनी से लेकर सलमान खान और तरह-तरह के जमूरे-जोकर, क्रिकेट के भगवान सचिन तेंदुलकर तक हाथ में झाड़ू लिए फोटो खिंचवा रहे हैं। इस तरह जनता की आंख में धूल झोंक रहा है यह आदमी, तो क्या जनता इस तमाशे की हक़ीक़त नहीं समझ रही है ?

सवाल है कि समझ के करे भी तो क्या ? राजनीतिक विकल्पशून्यता की स्थिति ने ही तो इस अल्पमत प्राप्त (महज़ 31 फ़ीसद) सरकार को सत्ता में आने का मौका दिया। अब ये हर मनमानी करेगा और ग़रीबों से उसकी आख़िरी दमड़ी तक छीनने की पुरजोर कोशिश में लगेगा, क्योंकि तभी अंबानियों का मुनाफ़ा औसत पर बना रह सकता है, लेकिन इसके बाद इसके वश की भी कुछ नहीं रह जाएगी और तब फ़िर वो क़ोहराम मचेगा कि प्रलय जैसी स्थिति पैदा होगी। दंगा-फ़साद, लूट-मार, बलात्कार-अराजकता। मोदी के शासन में ही ये दौर भी आने वाला है, जिसका ट्रेलर लगभग रोज-ब-रोज ही दिखाई पड़ रहा है।

मोदी जब महाराष्ट्र चुनाव-प्रचार के दौरान विदर्भ में जाते हैं, तो किसानों की आत्म हत्या का सवाल उठाकर कांग्रेस-एनसीपी पर तंज कसते हैं, पर ये भूल जाते हैं कि लाखों की तादाद में वहां और देश के अन्य भागों में कर्ज़ में डूबे जिन किसानों ने आत्महत्या की है, उसके लिए भाजपा भी जिम्मेवार है, क्योंकि उस दौरान केन्द्र में भाजपा का भी शासन था। और महाराष्ट्र में शिवसेना-भाजपा का। फ़िर चुनाव के मौके पर ही नरेन्द्र मोदी को किसानों की आत्महत्या की बात क्यों याद आई, पहले तो इस पर कभी कुछ नहीं कहा, न ही भाजपा के किसी अन्य नेता ने, मनमोहन सिंह तो खैरात बांटने गए थे आत्महत्या करने वाले किसानों के परिवारों के बीच, जिसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया। पर भाजपा ने उनके प्रति कभी संवेदना नहीं दिखाई, जबकि किसान आज भी आत्महत्या कर रहे हैं, और मोदी गांवों को गोद लेने का नाटक रचा रहे हैं।

इसलिए, इस बात को तो भूल जाना चाहिए जनता को कि यह आदमी उसके हक़ में कुछ करने वाला है। ये ग़रीबों का दुश्मन है और अमीरों के हितों का रखवाला, थैलीशाहों का प्यादा है, जो अब उनकी उम्मीदों पर खरा नहीं उतरेगा तो पीएम की कुर्सी से धकिया दिया जाएगा। रहा सवाल हिटलर बनने का, तो वो ज़माना लद गया। इंग्लैंड-फ्रांस के ढहने और साम्राजी ताकत के रूप में जर्मनी के उभरने का उद्दत प्रतिनायक था हिटलर, जिसे स्टालिन की सर्वहारा कथित तानाशाही ने आख़िर मिटा डाला। लेकिन ये दौर तो हर तरह से साम्राज्यवाद और पूंजी के विकराल संकट का है और यही कारण है कि इसका राजनीतिक प्रतिनिधि बहुत ही टुच्चा दिखाई पड़ता है।, अपने भाषणों से और करतबों से हास्यास्पद होता चला जाता है। नरेन्द्र मोदी का 'फेंकू' कह कर जितना तिरस्कार किया गया, उतना किसी भी नेता का आज तक भारत में तिरस्कार नहीं हुआ। समाज के एक बड़े हिस्से में मोदी के प्रति एक उपेक्षा और हिकारत का भाव दिखाई पड़ता है।

तो क्या मोदी का फ़िलहाल कोई विकल्प है ?

विकल्प बनने को फ़िर से संगठित होने की कोशिश में हैं वही ताकतें जो अपना प्रभाव लगभग खो बैठी हैं और जिनसे त्रस्त होकर 31 फ़ीसदी वोटरों ने मोदी का चुनाव कर लिया, जिसे वो सवा अरब भारतीयों का समर्थन बताते हैं। कांग्रेस तो मुर्दा पड़ी है। समाजवादी पार्टी, जदयू, चौटाला एवं अन्य क्षेत्रीय दल फ़िर से एक होने की कोशिश कर रहे हैं और दशकों पुराना गैरभाजपावाद-गैरकांग्रेसवाद का नारा उछाल रहे है। वामपंथी भी योजना बना रहे हैं और फ़िर से अपनी ताकत आजमाना चाहते हैं। पर लगता नहीं कि मोदी का विकल्प बन पाएंगे। जातिवाद और अल्पसंख्यकवाद के आधार पर कब तक वोटरों को बरगला कर लूट का निज़ाम क़ायम किया जा सकता है।

विकल्प भविष्य के गर्भ में है। ज्वाला मुखी ज़मीन के अंदर धधक रहा है।

विकास के गुजरात मॉडल का सच

लोकसभा चुनाव के दौरान 'गुजरात का विकास मॉडल' मीडिया और चुनावी सभाओं में छाया रहा। तथ्यों की रोशनी में इसकी सच्चाई को जानने का प्रयास करें तो गुजरात की एक अलग ही तस्वीर सामने आती है।

गुजरात सरकार ने देश के अग्रणी पूंजीपति रतन टाटा को नैनो कार का कारखाना लगाने के लिए 9570 करोड़ रुपये का कर्ज 0.1 प्रतिशत की ब्याज दर पर दिया। यानी टाटा को एक साल में दस हज़ार रुपये के कर्ज पर मात्र 1 रुपये का ब्याज देना है। इसी के साथ-साथ उन्हें 20 साल तक कर्ज न लौटाने की छूट है। यानी 20 साल बाद उन्हें 10 हज़ार रुपये के कर्ज के ब्याज के रूप में मात्र 20 रुपये ही देने पड़ेंगे। इसके अलावा कारखाने को सिंगुर से साणंद (गुजरात) लाने के खर्च के रूप में उन्हें 700 करोड़ रुपये दिये गये। 10 हज़ार रुपये प्रति वर्ग मीटर भाव वाली ज़मीन 900 रुपये प्रति वर्ग मीटर के भाव से दी गयी। कुल मिलकर मोदी सरकार ने टाटा को लगभग 30 हज़ार करोड़ रुपये दान में दिये। टाटा जिस नैनों कार को 1 लाख में बेच रहे हैं उसमें 60 हज़ार रुपये गुजरात सरकार की सबसीडी है।

निश्चय ही यह रकम नरेन्द्र मोदी की नहीं, जनता की थी। जनता ने उन पर भरोसा करके उन्हें इसका रखवाला बनाया था। गुजरात में हज़ारों किसान कर्ज के बोझ से दबकर आत्महत्या कर चुके हैं और लाखों तबाही के कगार पर बैठे हैं। इस रकम से 30 लाख किसानों को एक-एक लाख रुपये की राहत दी जा सकती थी। गुजरात के मज़दूरों को देश में सबसे कम मज़दूरी मिलती है। इस रकम से उनकी हालत सुधारी जा सकती थी। गुजरात में 70 प्रतिशत दलित लड़कियां हाई स्कूल तक भी नहीं पढ़ पाती। इस रकम से उन सभी को अच्छे स्कूलों में पढ़ाया जा सकता था। गुजरात के आधे से ज्यादा बच्चे कुपोषित हैं। दूसरे कई राज्यों से कहीं ज़्यादा, यहां हज़ार में से 148 माताएं प्रसव के दौरान मर जाती हैं। जिसकी मूख्य वजह खून की कमी होती है। इसी तरह कुपोषण और मामूली इलाज के अभाव में 1000 में से 72 बच्चे बचपन में ही मौत के शिकार हो जाते हैं, जबकि एक गरीब राज्य तमिलनाडु में यह संख्या 22 है। तीस हज़ार करोड़ रुपये से इनमें से करोड़ों की जिन्दगी बचाई जा सकती है।

गुजरात की मोदी सरकार द्वारा जनता की दौलत को पूंजीपतियों की तिजोरी में भर देने के कुछ और उदाहरण भी काबिलेगौर हैं।

मोदी सरकार ने अडानी को मुन्दरा में समुद्र के साथ लगी 7350 हेक्टेयर उपजाऊ ज़मीन 30 साल के लिए 1 रुपये से लेकर 32 रुपये प्रति वर्ग मीटर की दर से पट्टे पर दे दी। जबकि इसका बाजार भाव 1500 रुपये प्रति वर्ग मीटर था। कैग की रिपोर्ट के अनुसार अडानी ने सरकारी कम्पनी 'गुजरात विकास निगम' के साथ धोखाधड़ी की जिसके जुर्माने के रूप में उसे 240.08 करोड़ रुपये भरने थे। इसमें से उसके 160 करोड़ रुपये मोदी सरकार ने माफ़ कर दिये। एस्सार स्टील कम्पनी ने 7,24,687 वर्ग मीटर जमीन पर अवैध कब्जा कर लिया। मोदी सरकार ने 238 करोड़ रुपये से ज्यादा का घाटा उठाकर जमीन उसी कम्पनी को दे दी। इसी तरह लार्सन एंड टुर्बो कम्पनी को 128।71 करोड़ का घाटा उठाकर परमाणु बिजली घर बनाने के लिए जमीन दे दी।

कुछ लोग तर्क देते हैं कि गुजरात में नये-नये उद्योग लगने से वहां बहुत विकास हुआ है, भारी पैमाने पर रोजगार पैदा हुआ है और गुजरात अर्थिक रूप से एक मजबूत अर्थव्यवस्था वाले प्रदेश के रूप में आगे आया है। लेकिन सच्चाई इसके एकदम उलट है पिछले दस सालों में गुजरात में रोजगार की वृद्धि पूर्णतया ठहरावग्रस्त है। शहरों में सेवा क्षेत्र में मामूली रोजगार पैदा हुआ है। कुछ लोग़ों को उद्योगों में भी रोजगार मिला है, लेकिन पिछले दस सालों में देहात में भारी संख्या में लोग अपने पेशों से उजड़े हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण 2009-10 के अनुसार गुजरात में किसानों ने भारी पैमाने पर अपनी जमीन गंवाई है। पिछले दशक में भूमिहीनता में बेहिसाब बढ़ोत्तरी हुई है जिसके चलते खेती पर निर्भर अन्य पेशों में भी गिरावट आयी है। इसका मुख्य कारण कॉर्पोरेट खेती तथा ठेका खेती के मॉडल को लागू करना है। हाल ही में वास्तविक मज़दूरी के बारे में छपी रिपोर्ट दिखाती है कि गुजरात में वास्तविक मज़दूरी देश में सबसे कम है। रिपोर्ट दिखाती है कि राष्ट्रीय स्तर पर औसत नियमित मज़दूरी 450 रुपये और दिहाड़ी मज़दूरी 170 रुपये प्रतिदिन है। जबकि गुजरात में यह औसत 320 रुपये और 145 रुपये प्रतिदिन है।

नियमित मज़दूरी में गुजरात की स्थिति देश के सभी राज्यों से खराब है और दिहाड़ी मज़दूरी में वह बीसवें स्थान पर है। ग्रामीण क्षेत्र में मज़दूरी का राष्ट्रीय औसत 139 रुपये प्रतिदिन है जबकि गुजरात में यह 113 रुपये प्रतिदिन ही है। इसमें भी गुजरात बीसवें स्थान पर है। स्पष्ट है कि गुजरात की मोदी सरकार ने भारी पैमाने पर छोटे किसानों को उजाड़कर उन्हें पूंजीपतियों के लिये बहुत ही कम मज़दूरी पर काम करने वाले मज़दूरों की फ़ौज खड़ी की है। गुजरात में मोदी सरकार के गरीबी हटाने के दावे भी आंकड़ों की हेड़ा-फेड़ी के सिवा और कुछ नहीं है। जनवरी में गुजरात सरकार ने ग्रामीण इलाके के लिये गरीबी रेखा 340 रुपये प्रति माह प्रति व्यक्ति और शहरी इलाके के लिए 501 रुपये प्रतिमाह प्रति व्यक्ति तय की थी। इसके हिसाब से ग्रामीण इलाके में 11 रुपये प्रतिदिन और शहरी इलाके में 17 रुपये प्रतिदिन कमाने वाला व्यक्ति सरकार की निगाह में गरीब नहीं है। इसके आधार पर उन्होंने दावा किया था कि गुजरात की मात्र 1 प्रतिशत आबादी ही गरीबी रेखा से नीचे है। अगर देश में गरीबी की मूल परिभाषा 2200 कैलोरी प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति आहार तक पहुंच के आधार पर गणना की जाये तो 2009-10 के उपभोग खर्च के आधार पर गुजरात की गरीबी रेखा ग्रामीण क्षेत्र में 1,290 रुपये और शहरी क्षेत्र में 2,080 रुपये बैठती है। इस आधार पर गुजरात की 76 प्रतिशत ग्रामीण आबादी और 66 प्रतिशत शहरी आबादी गरीबी रेखा से नीचे है। इस मामले में गुजरात की हालत छत्तीसगढ़ और ओड़िसा से भी बदतर है।

-देश विदेश